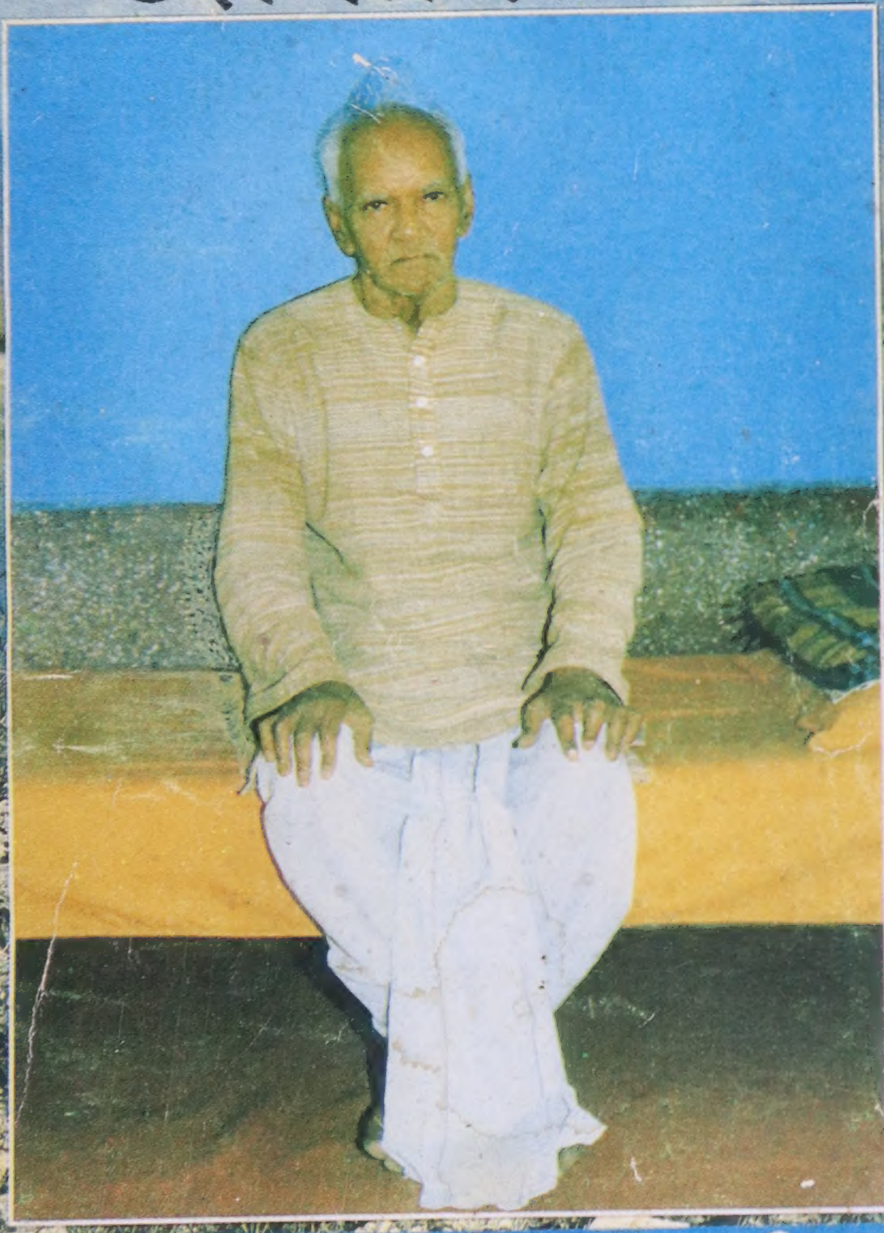
जीवन-लक्ष्य और उसकी प्राप्ति



-श्रीराम शर्मा आचार्य

जीवन लक्ष्य और उसकी प्राप्ति

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

तृतीय बार १९९७ मूल्य ३-०० रुपया

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)

⊝

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

⊝

सितंबर १९९६

⊝

मूल्य : ३–०० रुपया

⊝

मुद्रक :

युग निर्माण प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा–३

जीवन लक्ष्य और उसकी प्राप्ति

मनुष्य जीवन का अमूल्य यात्रा-पथ

मनुष्य परमात्मा की अलौकिक कृति है । वह विश्वम्भर परमात्म देव की महान रचना है । जीवात्मा अपनी यात्रा का अधिकांश भाग मनुष्य शरीर में ही पूरा करता है । अन्य योनियों से इसमें उसे सुविधाएं भी अधिक मिली हुई होती हैं । यह जीवन अत्यंत सुविधाजनक है । सारी सुविधाएं और अनन्त शक्तियां यहां आकर केन्द्रित हो गई हैं ताकि मनुष्य को यह शिकायत न रहे कि परमात्मा ने उसे किसी प्रकार की सुविधा और सावधानी से वंचित रखा है । ऐसी अमूल्य मानव देह पाकर भी जो अंधकार में ही डूबता उतराता रहे उसे भाग्यहीन न कहें तो और क्या कहा जा सकता है ?

आत्मज्ञान से विमुख होकर इस मनुष्य जीवन में भी जड़ योनियों की तरह काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि की कैद में पड़े रहना सचमुच बड़े दुर्भाग्य की बात है । किंतु इतना होने पर भी मनुष्य को दोष देने का जी नहीं करता, बुराई में नहीं वह तो अपने स्वाभाविक रूप में सत्, चित् एवं आनंदमय ही है । शिशु के रूप में वह बिल्कुल अपनी इसी मूल प्रकृति को लेकर जन्म लेता है किंतु माता पिता की असावधानी, हानिकारक शिक्षा, बुरी संगति, विषैले वातावरण तथा दुर्दशाग्रस्त समाज की चपेट में आकर वह अपने उद्देश्य से भटक जाता है । तुच्छ प्राणी का सा अविवेकपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगता है ।

इसलिए निंदा मनुष्य की नहीं दोषों की, दुर्गुणों की की जानी चाहिए । ये मनुष्य को प्रकाश से अंधकार में धकेल देते हैं । मनुष्य का जीवन तो जीवन के ढांचे में ढाले गए किसी उपकरण की

तरह है जिसके अच्छे परिणाम का श्रेय सामाजिक शिक्षा ए
तात्कालिक परिस्थितियों को ही देना उचित प्रतीत होता है । यदि
मनुष्य को सदाचार युक्त एवं आदर्शों से प्रेरित देखना चाहते हों त
द्वेष, दुर्गुणों को मिटाकर सुन्दर प्रकाश युक्त वातावरण पैदा कर
का प्रयास करना चाहिए । अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लि
किसी वर्ग, व्यक्ति या समाज पर आत्महीनता का भार लादना उचि
नहीं । इससे मानवता कलंकित होती है । हम वह करें जिससे य
अज्ञान का पर्दा नष्ट हो और दिव्य ज्ञान का प्रकाश चारों तर
झिलमिलाने लगे ।

सुविधाजनक यात्रा का सामान्य नियम यह है कि समय सम
पर यात्री अपना स्थान दूसरों के लिए छोड़ते जाएं । उतरते चढ़
रहने की प्रक्रिया से ही कोई यात्रा विधिपूर्वक संपन्न हो सकती है
ऐसी व्यवस्था मनुष्य जीवन में भी होनी चाहिए । परमात्मा ने अप
यह नियम बना दिया है कि मनुष्य एक निश्चित समय तक ही इ
वाहन का उपयोग करे और आगे के लिए उस स्थान को कि
दूसरे के लिए सुरक्षित छोड़ जाए । यह एक प्रकार की उस
जिम्मेदारी है कि आगंतुकों का, भावी नागरिकों का निर्माण चतुर
और बुद्धिमत्ता के साथ करे । केवल अपने ही स्वार्थ का ध्यान
रखकर आने वाले यात्री के लिए इस प्रकार का वातावरण छो
जाए ताकि वह भी अपनी यात्रा सुविधा और समझदारी के साथ प
कर सके ।

कर्तव्य की इति श्री इतने से ही नहीं हो जाती । अपने सा
अनेकों दूसरे यात्री भी सफर कर रहे होते हैं । मानवता के न
उन्हें भी आपकी तरह सुविधापूर्वक यात्रा करने का अधिकार मि
हुआ होता है । यदि आपको कुछ अधिक शक्ति और सामर्थ्य मिली
तो इसका यह मतलब नहीं कि आप औरों को बलपूर्वक सताएं उ

परेशान करें । खुद तो मौज उड़ाते रहें और दूसरों को बैठने की सुविधा न दें । हमारे ऋषियों ने एक व्यवस्था स्थापित की थी प्रत्येक नागरिक उतनी ही वस्तु ग्रहण करे जितने से उसकी आवश्यकताएं पूरी हो जाएं शेष भाग समाज के अन्य पीड़ित प्राणियों अभावग्रस्त लोगों में बांट दिया जाए ताकि समाज में किसी तरह की गड़बड़ी न फैले । विषमता चाहे वह धन की हो चाहे जमीन जायदाद की हो, हर अभाव ग्रस्त के मन में विद्रोह ही पैदा करेगी और उससे सामाजिक बुराइयां ही फैलेंगी । इसलिए न्याय नीति का परित्याग कभी नहीं होना चाहिए । सबके हित में ही अपना भी हित समझकर मनुष्य को मनुष्यता से विमुख नहीं होना चाहिए । इसी में शांति है सुख और सुव्यवस्था है ।

मनुष्य बुराइयों से बचता रहे इसके लिए उसे हर घड़ी अपना लक्ष्य अपना उद्देश्य सामने रखना चाहिए । यात्रा में गड़बड़ी तब फैलती है जब अपना मूल लक्ष्य भुला दिया जाता है । मनुष्य जीवन में जो अधिकार एवं विशेषताएं प्राप्त हैं वह किसी विशेष प्रयोजन के लिए हैं । इतनी सहूलियत अन्य प्राणियों को नहीं मिली । मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसको सुन्दर शरीर, विचार विवेक, भाषा आदि के बहुमूल्य उपहार मिले हैं, इनकी सार्थकता तब है जब मनुष्य इनका सही उपयोग कर ले । मनुष्य देह जैसे अलभ्य अवसर को प्राप्त करके भी यदि वह अपने पारमार्थिक लक्ष्य को पूरा नहीं करता तो उसे अन्य प्राणियों की ही कोटि का समझा जाना चाहिए । जन्म जन्मांतरों की थकान मिटाने के लिए यह बहुमूल्य अवसर है जब मनुष्य अपने प्राप्त ज्ञान और साधनों का उपयोग कर ईश्वर प्राप्ति की चरम शांतिदायिनी स्थिति की प्राप्ति कर सकता है । जिन्हें साधन निष्ठा की इतनी शक्ति नहीं मिली या जो कठिन तपश्चर्याओं के मार्ग पर नहीं जाना चाहते वे इस जीवन से उत्तम संस्कार, सद्‌भावनाएं

और श्रद्धा भक्ति तो पैदा कर ही सकते हैं ताकि अगले जीवन मे परिस्थितियों की अनुकूलता और भी बढ़ जाए और धीरे धीरे अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढ़ने का कार्यक्रम चालू रख सके ।

पर इस अभागे इन्सान को क्या कहें जो आत्म स्वरूप को भूलकर अपने वासना 'शरीर' को ही सजाने में आनंद ले रहा है मनुष्य यह देखते हुए भी कि यह शरीर नाशवान है और अन्य जीवधारियों के समान इसे भी किसी न किसी दिन धूल में मिल जाना है फिर भी वह शारीरिक सुखों मृगतृष्णा में इस तरह पागल हो रहा है कि उसको अपने सही स्वरूप तक का ज्ञान नहीं है शारीरिक सुखों के संपादन में ही वह जीवन का अधिकांश भाग नष्ट कर देता है । जब तक शक्ति और यौवन रहता है तब तक उसकी यह समझदारी की आंखें खुलती तक नहीं, बाद में जब संस्कार की जड़ें गहरी जम जाती हैं और शरीर में शिथिलता आ जाती है तब फिर समझ आने से भी क्या बनता है ? चतुरता तो तब है जब अवसर रहते मनुष्य सद्गुणों का संचय करके इस योग्य बन जाए कि यह यात्रा संतोषपूर्वक पूरी करके लौटने में कोई बाधा शेष न रहे ।

हमारा सहज धर्म यह है कि हम इस जीवन में प्रकाश की अर्चना करें और उसी की ओर अग्रसर हों । इसमें कुछ देर लगे पर जब भी उसे एक नया जीवन मिले हम प्रकाश की ओर ही गतिमान बने रहें । मनुष्य का दृढ़ निश्चय उसके साथ बना रहना चाहिए । हमारा विवेक कुतुबनुमा की सुई की भांति ठीक जीवन लक्ष्य की ओर लगा रहना चाहिए ताकि हम अपनी इस यात्रा में भूल भटकें नहीं ।

इस जीवन में काम, क्रोध, लोभ तथा मोह आदि के मल विक्षेप आत्म पवित्रता को मलिन करते रहते हैं । इस मलिनता को ब्रह्मचर्य

श्रद्धा, श्रम और प्रेम के दिव्य गुणों द्वारा दूर करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । इसमें संदेह नहीं, यह मार्ग कठिनाइयों और जटिलताओं से ग्रस्त है । पर यदि सच्चाई, श्रद्धा, भक्ति एवं आत्म समर्पण के द्वारा ईश्वर के सतोगुणी प्रकाश की ओर बढ़ते रहें तो यह कठिनाइयां मनुष्य का कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं ।

जीवन का लक्ष्य भी निर्धारित करें

जीवन यापन और जीवन लक्ष्य दो भिन्न बातें हैं । प्रायः सामान्य लोगों का लक्ष्य जीवनयापन ही रहता है । खाना-कमाना, ब्याह-शादी, लेनदेन व्यवहार-व्यापार आदि साधना जीवन क्रम को पूरा करते हुए मृत्यु तक पहुंच जाना, बस इसके अतिरिक्त उनका अन्य कोई लक्ष्य नहीं होता । एक जीविका का साधन जुटा लेना, एक परिवार बसा लेना और बच्चों का पालन पोषण करते हुए शादी-ब्याह आदि कर देना मात्र ही साधारणतया लोगों ने जीवन का लक्ष्य मान लिया है ।

वस्तुतः यह जीवनयापन की साधारण प्रक्रिया मात्र है, जीवन लक्ष्य नही । जीवन लक्ष्य उस सुनिश्चित विचार को ही कहा जाएगा, जो संसार के साधारण कार्यक्रम से कुछ अलग, कुछ ऊंचा हो और जिसे पूरा करने में कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ करना पड़े ।

जीवन में कोई सुनिश्चित लक्ष्य, कुछ विशेष ध्येय धारणा करके चलने वालों को असाधारण व्यक्तियों की कोटि में रखा जाता है । उनकी विशेषता तथा महानता केवल यही होती है कि परंपरासे साधारण जीवन के अभ्यस्त व्यक्तियों में से उनने कुछ बढ़कर, कुछ असामान्यता ग्रहण की है । लोग उनको महान इसलिए मान लेते हैं कि सामान्य लोग समझी बूझी तथा एक ही लीक पर चलती चली जा रही जीवन गाड़ी में न जाने कितने दुख तकलीफें अनुभव करते हैं, तब उस व्यक्ति ने एक अन्य, अनजान एवं असामान्य मार्ग चुना

है। उसका साहस एवं कष्ट सहिष्णुता कुछ अधिक बढ़ी चढ़ी है।

जीवन यापन की साधारण प्रक्रिया को भी यदि एक असामान्य दृष्टिकोण से लेकर चला जाए तो वह भी एक प्रकार का जीवन लक्ष्य बन जाता है इस साधारण प्रक्रिया का असाधारणत्व केवल वही हो सकता है कि जीवन इस प्रकार से बिताया जाए जिसमें मनुष्य पतन के गर्त मे न गिरकर एक आदर्श जीवन बिताता हुआ उसकी परि समाप्ति तक पहुंच जाए। जिसने जीवन को आहों, आंसुओं तथा विषादों से मुक्त करके हास, उल्लास, हर्ष, प्रमोद तथा उत्साह के साथ बिता लिया है, उसने भी मानो सफल जीवनयापन का एक लक्ष्य ही प्राप्त कर लिया है। जिसने संतोषपूर्वक हंसते हुए जीवन परिधि के बाहर पैर रक्खा है, उसका जीवन सफल ही माना जाएगा इसके विपरीत जिसने जीवन परिधि को रोते तड़पते तथा तरसते हुए पार किया, मानों उसका जीवन घोर असफल ही हुआ।

जीवन की सफलता का प्रमाण जहां किसी के कार्य और कर्तृत्व से दिया करते हैं, वहां उसकी अंतिम श्वांस में सन्निहित शांति एवं संतोष की मात्रा भी उसका एक सुंदर प्रमाण है।

जीवनयापन को जीवन लक्ष्य मानने वाले भी जब तक अपने जीवन में एक व्यवस्था, एक अनुशासन और एक सुंदरता नहीं लाएंगे, तब तक जीवन जीने की स्वाभाविक प्रक्रिया में भी सफल न हो सकेंगे। जिस जीवन में हास, उल्लास तथा उत्साह की मात्रा जितनी अधिक होगी, वह उतना ही सुंदर होगा। प्रसन्नता ही जीवन की सुंदरता का दूसरा नाम है। जिस जीवन में हास नहीं, उत्साह एवं उल्लास नहीं, उसमें क्यों न संसार भर के सुख साधन हों, क्यों न वह विपुल सोने से निर्मित किया गया हो, सुंदर नहीं कहा जा सकता।

ऊंची कोठी, सजे कमरे, सुन्दर, वस्त्र, परिपूर्ण तिजोरियां और रंगरूप से भरी रंगरेलियां भले ही किसी के जीवन को दूसरों के लिए आकर्षक बना दें किंतु यह उपादान उसके स्वयं के लिए जीवन की सुंदरता का सृजन नहीं कर सकते ।

जीवन की सुंदरता बाहरी वैभव में नहीं, मनुष्य के आंतरिक संसार में हुआ करती है । जिसके गुण, कर्म, स्वभाव जितने ही सात्विक और सुरुचिपूर्ण होंगे उसका जीवन उतना ही प्रसन्न, उतना ही सुंदर होगा । जो अविचारी, व्यभिचारी अथवा अवगुणी है, वह कितना ही धनवान, शानशौकत वाला सुन्दर शरीर और रहन सहन वाला क्यों न हो, सुंदर जीवन की परिधि में नहीं आ सकता । इसके विपरीत जो सामान्य स्थिति का है, गरीब है, बहुत सुंदर शरीर वाला भी नहीं है यदि वह शिष्ट, सभ्य, सुशील, संतुष्ट और शांत है तो वह अधिक सुंदर जीवन कहा जाएगा ।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य भी समझें

प्रातः सूर्य उदय होते ही जिंदगी का एक नया दिन शुरू होता है और सूर्यास्त होने तक दिन समाप्त हो जाता है । इस तरह रोज एक दिन उम्र से घट जाता है । जन्म लेने के बाद से ही आयु–क्षय का यह कार्यक्रम शुरू हो जाता है किंतु अनेक प्रकार के कार्यभार से बढ़े हुए विभिन्न क्रिया व्यापारों में लगे रहने के कारण इस बीतते समय का पता नहीं चलता । ऐसे अवसर प्रायः प्रतिदिन आते हैं जब जीवों के जन्म, वृद्धावस्था, विपत्ति, रोग और मृत्यु के कारुणिक, विचार परक दृश्य देखते हैं किंतु कितना मदांध, कामनाग्रस्त और अविवेकी है इस धरती का मनुष्य कि वह सब कुछ देखते हुए भी आंखों से, विवेक और विचार की आंखों से अंधा ही बना हुआ है । मोह और सांसारिक प्रमाद में लिप्त मनुष्य घड़ी भर एकांत में बैठकर इतना भी नहीं सोचता कि इस कौतूहलपूर्ण नर तन में जन्म लेने का

उद्देश्य क्या है ? हम कौन हैं, कहां से आए और कहां जा रहे हैं ?

प्रकृति प्रवाह की अबूझ परंपरा में प्रवाहित मनुष्य संसार के सुखों को, इंद्रिय के भोगों को, पदार्थों के स्वामित्व को, धन, पुत्र तथा विविध कामनाओं को ही जीवन का लक्ष्य बनाकर एक बहुमूल्य अवसर को खो देता है । अंततः काल की घड़ी जब सामने आती है और विदा होते समय सिर पर पापों, दुष्कर्मों का भयंकर बोझ चढ़ा दिखाई देता है तो भारी पश्चात्ताप, घोर संताप और आंतरिक अशांति होती है । सौदा बिक गया फिर कीमत लगाते भी तो क्या ? विशाल वैभव अपार धन धान्य की राशि, पुत्र कलत्रादि कोई भी साथ नहीं देता । यह सारा संसार यहां की परिस्थितियां सब ज्यों की त्यों दिखाई देती हैं किंतु यह सब उस समय उपयोग के बाहर होती हैं अपना शरीर भी साथ नहीं देता । केवल अच्छे बुरे संस्कारों का बोझ लादे हुए जीव परवश यहां से उठ जाता है । कितनी अस्थिरता होती होगी उस समय यह कोई भुक्त भोगी ही समझता होगा ।

मनुष्य के जीवन में यह जो विस्मृति है वह सब असत् के संग से है । ज्ञान का आदर करने से हमारे भीतर प्रश्न उठेंगे । हमारा कौन हम क्या हैं ? हमें क्या नहीं करना चाहिए ? इसका ज्ञान हमारे अंदर मौजूद है पर अपने जीवन का कोई सही दृष्टिकोण न बना सकने के कारण वह सारी ज्ञान शक्ति विशृंखलित और बेकाम पड़ी हुई है मनुष्य का पहला पुरुषार्थ है–जीवन लक्ष्य में प्रमाद न होने देना । यह तभी संभव है जब कर्तव्यों का उचित और सम्यक् ज्ञान हो । कर्तव्य की विस्मृति मनुष्य ने अपने आप ही की है । जब वह कुछ करना चाहता है तो उसे औरों की आवश्यकता का ध्यान नहीं होता वरन वह यह जानना चाहता है कि इसमें मेरा लाभ क्या है ? अपने लाभ की अपेक्षा औरों के लाभ की बात सोचे तो कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान पर ही मनुष्य का उत्थान और पतन अवलंबित है ।

यावहारिक जीवन में कोई नीचे नहीं गिरना चाहता । सभी ऊंचे बहुत ऊंचे उठने की आकांक्षा लिए हैं । प्रत्येक मनुष्य अपने आपको ऊंचा सिद्ध करना चाहता है । इसके लिए अपनी अपनी तरह के पुष्टि और प्रमाण भी एकत्रित करते हैं और समय पड़ने पर उन्हें व्यक्त भी करते हैं । ऊंचे उठना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म भी है, पर यदि किसी से यह पूछा जाए कि क्या उसने इस गंभीर प्रश्न पर गहराई से विचार किया है ? क्या कभी उसने यह भी सोचा है कि आकांक्षा की पूर्ति के लिए उसने क्या योजना बनाई है ? तो अधिकांश व्यक्ति इस गूढ़ प्रश्न की गहराई का भेदन न कर सकेंगे । बात सीधी सी है । महानता मनुष्य के अंदर छिपी हुई है और व्यक्त होने का रास्ता खोजती है, पर सांसारिक कामनाओं में ग्रस्त मनुष्य उस आत्म प्रेरणा को भुला देना चाहता है, ठुकराए रखना चाहता है । अपमानित आत्मा चुपचाप शरीर के भीतर सुप्त पड़ी रहती है और मनुष्य केवल विडंबनाओं के प्रपंच में ही पड़ा रह जाता है ।

शारीरिक दृष्टि से मनुष्य कितना ही बली हो जाए, बौद्धिक दृष्टि से वह कितना ही तर्कशील क्यों न हो, धर्म के जखीरे भले ही लगे हों, पर आत्म संपदा के अभाव में वह मणि विहीन सर्प की तरह अर्द्ध विकसित कहा जाएगा आत्मबल की उपलब्धि का एक सुख, संसार के करोड़ों सुखों से भी बढ़कर होता है । आत्मिक संपदाओं वाले नेतृत्व करते हैं, जनमार्ग दर्शन करते हैं । निर्धन फकीर होने पर भी बड़े बड़े महलों वाले उनके पैरों में गिर कर दया की भीख मांगते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की महानता बाह्य नहीं आंतरिक है । उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित होती है । भौतिक संपदाएं तुच्छ हैं, थोड़े समय तक महानता या बड़प्पन जताकर नष्ट हो जाती हैं ।

मनुष्य शरीर जैसा अलभ्य अवसर पाकर भी यदि उसका उद्देश्य नहीं जाना गया तो क्या मनुष्य का शरीर और पशु का शरीर आत्म कल्याण की साधना जो इस जीवन में नहीं कर लेता, उसके लिए इस सुर दुर्लभ अवसर का कुछ भी उपयोग नहीं ।

थोड़ा बाहर आकर देखिए, यह संसार कितना विस्तृत है, कितना विशाल है । रात्रि के खुले आसमान के नीचे खड़े होकर थोड़ा चारों ओर दृष्टि तो दौड़ाइए, कितने ग्रह नक्षत्र बिखरे पड़े हैं कितना बड़ा फैलाव है इस संसार का । पर इन सब बातों पर विचार करने का समय तभी मिलेगा जब भोगोन्मुख वृत्ति से चित्त हटाकर इन अपार्थिव विषयों की ओर भी थोड़ी दृष्टि जमाएंगे । कामनाएं ही हैं, जो हमारी राह रोके खड़ी हैं । स्वार्थ ही है जो आत्म विकास के मार्ग पर आड़े अड़ा खड़ा है । ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, भय, लोभों वाले निविड़ में भटक गए हैं । हम इससे महानता की ओर अग्रसर नहीं हो पा रहे हैं ।

हम उदार बनें साहस पैदा करें और आध्यात्मिक जीवन की कठिनाइयों को झेलने के लिए उठकर खड़े हो जाएं, फिर देखें कि जिस महानता की उपलब्धि के लिए हम निरंतर लालायित रहते हैं वह सच्चे स्वरूप में मिलती हैं या नहीं । सत्य हमारे अंदर छुपा है उसे धर्म के द्वारा जाग्रत करो । शक्ति हमारे भीतर सोई पड़ी है उसे साधना से जगाओ, जीवन की सार्थकता का यही एक मात्र मार्ग है ।

जिसे धारण करने से भय रहित शांति मिले वही धर्म है । वही लक्ष्य है । दूसरों के अधिकार हमारे द्वारा सुरक्षित रहें । स्वय अधिकार की लोलुपता से मुक्त रहें । अपना कल्याण तृष्णा रहित वासना रहित एवं निष्काम होने में है । बंधन तो कामना ही बांधती है । इसी से भूल होती है । इसी से अवनति होती है, इसी से मनुष्य सब प्रकार से दीन हीन होकर कष्ट और क्लेष का झंझटों भर

जीवन बिताता रहता है । सुख और शांति भोग विलास में नहीं, मनुष्य की सच्चरित्रता, ईमानदारी और पवित्रता में है । सद्‌गुणों में ही मनुष्य का वैभव छिपा पड़ा है, जिसे प्राप्त कर जीवन के सभी अभाव दूर हो जाते हैं ।

जीवन लक्ष्य के प्रति मनुष्य की दृढ़ता प्रबल होनी चाहिए । उसे विचार और विवेक के द्वारा सुदृढ़ बनाकर अपने जीवन में गहराई तक ढाल देना पड़ेगा, तभी जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करा सकने वाली सफलता प्राप्त की जा सकेगी । वह संसार और यहां की परिस्थितियों पर जितना अधिक विचार करेंगे उतना ही विवेक बढ़ेगा, समझ आएगी और आत्म कल्याण का रास्ता साफ होगा । जब मनुष्य वस्तुस्थिति को समझ लेता है तो उसे मानने और अपनाने में भी कोई दिक्कत नही होती । पर जीवन लक्ष्य की दृढ़ता और आत्म विश्लेषण का विवेक इतना परिमार्जित होना चाहिए कि सांसारिक बाधाओं का, भोगों के प्रलोभनों का उस पर प्रभाव न पड़ सके तभी स्थिरता पूर्वक उस महानता की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है जिसके लिए मनुष्य योनि में जीवात्मा का अवतार होता है ।

जीवन लक्ष्य की ओर

मानव जीवन के दो पहलू हैं । एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म, एक जड़ दूसरा चेतन एक अंधकारमय दूसरा प्रकाशमय । एक मर्त्य और दूसरा अमर्त्य । संसार के सभी धर्मों, दर्शनों, महापुरुषों, विचारकों ने इसे स्वीकार किया है । अपनी भाषा, दृष्टिकोण आदि के कारण नाम अलग अलग भले ही हैं, किंतु सबका अंतिम निर्णय एक ही निकलता है ।

आदिकाल से ही मानव जाति जीवन के इन विभिन्न पहलुओं पर विचार करती आई है । इन दोनों में जो स्थिर है, सत्य है, चेतन है,

प्रकाश युक्त है, अमर्त्य है उसकी ओर भी अग्रसर होने का प्रय
किया है और यही आदि काल से चला आ रहा प्रयत्न मानव का ए
स्थाई उद्देश्य बन गया है। मनुष्य अंधेरे से प्रकाश को अधिक पसं
करता है मृत्यु नहीं चाहता वरन् अमर बनने की भावना आदि का
से रही है उसमें। वह दुख नहीं चाहता और सुख की खोज में ल
हुआ है। सीमित नहीं असीमित बनना चाहता है। कुरूपता, जड़ता
विकृति के बजाय सौंदर्य, चेतना, व्यवस्था, सुघड़ता से प्यार करत
भले ही हो पर अलग अलग क्षेत्र में मनुष्य अपने अपने ज्ञान, निर्मा
शक्ति के अनुसार सीमित हो, किंतु सबकी गति में एक ही ध्येय है
दुख से सुख, अंधेरे से प्रकाश, मर्त्य से अमर्त्य, जड़ता से चेतना की
ओर प्रगति करना।

यह नियम मानव जाति पर ही लागू नहीं होता वरन् यह सारी
सृष्टि का मूल नियम है। इतर प्राणी वर्ग एवं प्रकृति के प्रत्येक
स्पंदन में यह मुखरित हो रहा है। नदियां अपने अल्प और सीमित
स्वरूप से उस अनंत गंभीर विशद् सागर की ओर दौड़ी जा रही
हैं। ऊंचे ऊंचे पहाड़ अपनी उत्तुंग चोटियों को फैलाए उस सर्वव्यापी
सत्ता की ओर देख रहे हैं। मानों उन्हें अपना स्वरूप अल्पसीमित
जान पड़ रहा हो। जान पड़ता है वे भी उतने ही विराट अनंत महान
बनने की चिर प्रतीक्षा में खड़े हैं। बीज अपने क्षुद्र और साधारण
स्वरूप से संतुष्ट नहीं होता वह अपने आवरण को तोड़ फूट
निकलता है, महानता की ओर उसकी यात्रा जारी रहती है और वह
विशाल वृक्ष बन जाता है। फिर भी उसकी विपुल, महत् बनने की
साध रुकती नहीं और वह सुंदर फूलों से खिल उठता है, मधुर
फलों में परिणत होता हुआ अपनी सत्ता को असंख्यों बीजों में परिणत
कर देता है। उधर देखिए उस पक्षी शावक को उसे नीड़ क
संकीर्ण आवरण तुच्छ जान पड़ता है। वह अपने पंखों में फुर फुर

भर रहा है । नीड़ के दरवाजे में से अखिल विश्व भुवन की ओर देख रहा है जिसकी आनंद गोद में वह किलोल करना चाहता है । और देखो, निकल पड़ा वह सीमित अल्प आवरण को त्याग कर अनंत महत की ओर ।

अल्प से महत् की ओर अग्रसर होने की क्रिया सर्वत्र हो रही है । चैतन्य प्रकृति से तो यह और भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । मनुष्य इसका सर्वोत्तम उदाहरण है ।

आदि काल से चले आ रहे इन प्रयत्नों के बावजूद क्या मनुष्य अभी तक अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंचा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है । क्योंकि मानव जाति आज भी दुखी क्लांत, भयभीत नजर आ रही है । सघर्ष, क्लेश, कलह उसे खाए जा रहे हैं । ऐसा क्यों ? जबकि उसकी यात्रा अल्प से महत् की ओर चलती रही है ।

इसका प्रमुख कारण अल्प के द्वारा महत् को प्राप्त करने का प्रयत्न करना है । कोई बढ़ई यदि लकड़ी के बने कुल्हाड़े एवं औजारों से किसी लकड़ी को काटकर उसकी उपयोगी वस्तुएं बनाना चाहे तो उसे असफलता और निराशा ही मिलेगी । इतना ही नहीं उसका वृथा श्रम भी कुछ कम दुख नहीं देगा । बिजली कनैक्शन के अभाव में बड़े बड़े बल्वों से भी अंधेरा दूर नहीं हो सकता ।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य अल्प सीमित कुछ साधनों से जो स्वयं मर्त्य नाशवान जड़ हैं, महान् प्रकाश अमर्त्य असीम तत्व की प्राप्ति करने का प्रयत्न करता है । इसी कारण मनुष्य अपना लक्ष्य अभी तक नहीं पा सका है । मनुष्य सब ओर महान असीम बनना चाहता है किंतु उसे अपनी लघुता, सीमितता खाए जा रही है । वह सुखी बनने का प्रयत्न करता है किंतु दुखों से पीछा नहीं छूटता । अपने प्रयत्नों से मनुष्य ने जल, थल, नभ में गति प्राप्त करली, विज्ञान की

बड़ी बड़ी शक्तियां हस्तगत कर लीं फिर भी उसका मूल प्रश्न ज्यों का त्यों है ।

अल्प से महत् की यात्रा में मनुष्य उस तत्व का सहारा लेकर ही आगे बढ़ सकता है । जो स्वयं अमृत है, प्रकाश है, असीम है और वह तत्व सर्वत्र ही, स्वयं मनुष्य में विराजमान है, जिसे कहीं अन्यत्र खोजने की आवश्यकता भी नहीं है । यह मौलिक शक्ति सब में निहित है । बीज में, नदी में और संसार के प्रत्येक पदार्थ में और उसी शक्ति के द्वारा वे अपनी यात्रा पूर्ण करते हैं । बाह्य साधनों का संयोग लेकर प्रत्येक पदार्थ अपने अंदर की शक्ति को जाग्रत करता है और उसे असीम की ओर प्रवाहित करके लक्ष्य प्राप्त करता है । मनुष्य भी अपनी इस मौलिक शक्ति को उद्‌भूत करके अपनी यात्रा पूर्ण कर सकता है ।

अल्प से महत् की यात्रा का शक्ति केन्द्र स्वयं मनुष्य के अंदर निहित है, जिसके द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । मानव के अंतःक्षेत्र में निहित इस शक्ति केन्द्र के लिए मनुष्य को इतना पुरुषार्थ करना आवश्यक है कि वह अपने अंतर के पर्दों को हटाकर उस बिंदु के दर्शन करे । संपूर्ण एकाग्रता के साथ उसमें केन्द्रस्थ हो तो एक दिन उसकी चिर यात्रा अपने आप में ही पूर्ण हो जाए। उस बिंदु में ही असीम सिंधु समाया हुआ है, क्योंकि दोनों के गुण धर्म एक से हैं । सिधु ही बिंदु के रूप में मानव अंतर में बसा हुआ है । इस बिंदु के सहारे एक दिन मनुष्य सिंधु में भी अपनी गति प्राप्त कर सकता है । क्योंकि दोनों की गति एक दूसरे में है । प्रकाश, अमृत, असीम महत् का बिंदु मानव के लिए उसी तरह उपलब्धि का विशाल तत्व है जिस तरह प्रातःकाल होने पर सूर्य का प्रकाश सर्वत्र फैल जाता है । मनुष्य अपने हाथों बनाए गए भवन के किवाड़ खोलकर बाहर देखे तो भगवान भास्कर के दर्शन पाकर वह कृतार्थ हो

सकता है । इतना ही क्यो, उस का संपूर्ण आवरण भी अंशुमाली की किरणों के प्रकाश से जगमगा उठता है । इसी तरह अतर के पट उठाकर देखने पर मनुष्य को उस परम तत्व में गति, दर्शन, अनुभूति सब मिल जाती है ।

मानव जीवन की यात्रा का लक्ष्य इतना सहज और सरल होने पर भी मनुष्य अब तक क्यों भटक रहा है ? इसका कारण यही रहा है कि मनुष्य उसे अपने निकटतम अंतर में न खोजकर बाह्य जगत में खोजता रहता है । कस्तूरी मृग भी अपनी नाभिस्थित कस्तूरी को यत्र तत्र घास झाड़ियों, वृक्षों आदि मे खोजता रहता है और इस प्रयत्न में वह मारा जाता है । इसी तरह मनुष्य ने भी बाह्य पदार्थों में जीवन के सत्य की खोज की जिसके फलस्वरूप वह आज तक असफल रहा । बाह्य साधन सहायक हो सकते हैं किंतु वे साध्य रूप नहीं ले सकते । कांच का ग्लोब और लोहे का ढांचा लालटैन के बाह्य रूप का निर्धारण करता है किंतु प्रकाश का उद्गम तेल और बत्ती के अग्नि के साथ संयोग पर निर्भर करता है ।

अल्प से महत् की यात्रा में प्राथमिक आवश्यकता है कि मनुष्य अपने अंतर की ओर उन्मुख हो । जीवन की समस्त गतिविधियों का केन्द्रीकरण कर उन्हें अंतःकरण की प्रयोगशाला में लगावे । जिस तरह एक वैज्ञानिक संसार से दूर एक कोने में अपनी प्रयोगशाला में बैठा हुआ विज्ञान के गंभीर रहस्यों का निर्धारण करता है उसी तरह मनुष्य भी अपने अंतर की प्रयोगशाला में अन्वेषण करके एक दिन सत्य, अमृत, प्रकाश की प्राप्ति कर सकता है । कई मनीषियों ने किया भी है । अंतर के सुदृढ़ किले में बैठकर मनुष्य समस्त सृष्टि की गति प्राप्त कर सकता है । तब वह समस्त बाह्य वस्तुओं को भी नियमित करके अंतर बाह्य सभी क्षेत्रों से पूर्णता प्राप्त कर सकता है । तात्पर्य यह है कि अंतर जीवन ही दैवी जीवन है । बाह्य संसार

में भटकता हुआ मनुष्य उस असहाय अकेले सिपाही की तरह होगा जो निराश्रय, अपने शक्ति केन्द्र से भटका हुआ भयभीत होकर बचने की दौड़ भाग में लगा रहा हो फिर भी वह मौत की चट्टान से टकराकर चूर चूर हो जाता है । बाह्य जीवन स्थूल जीवन ही आसुरी जीवन है जिसमें बाह्य सफलताओं असफलताओं के लिए मनुष्य कुछ भी करने से नहीं चूकता ।

हमारा जीवन लक्ष्य-आत्मदर्शन

मनुष्य का अपना भी लक्ष्य खाने कमाने और मौज मजा करने तक ही सीमित नहीं । सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, राजनैतिक सीमा बंधनों तक ही उसका जीवन बंधा नहीं है । जन्म से मृत्यु तक की एक निश्चित अवधि, सुख दुख, लाभ हानि, मान अपमान की परिस्थितियां यह सोचने को विवश कर देती हैं कि मनुष्य जिस दिशा में चल रहा है यह उसकी दिशा नहीं है । उसकी सूक्ष्म बौद्धिक क्षमता यह बताती है कि मनुष्य कोई विशेष लक्ष्य लेकर इस धरती में अवतरित हुआ है । विशाल अंतरिक्ष, गगनस्पर्शी पर्वत सुदूर तक विस्तृत सागर, सूर्य–चंद, ग्रह–नक्षत्र सभी इंगित करते हैं कि इस जीवन से भी आगे कुछ है । अशांति, दुख और क्षोभ का कारण यही है कि हमे आत्मज्ञान नहीं, अपने लक्ष्य का भान नहीं है । यह अस्थिरता तब तक बनी रहती है जब तक मनुष्य अपना लक्ष्य नहीं जानता अपने मौलिक स्वरूप को नहीं पहचानता ।

इस संसार में अनेकों प्रकार के जीव जंतु, कीट पतंगे, पशु–पक्षी और मनुष्येतर प्राणी विद्यमान हैं । कई शारीरिक शक्ति में बड़े हैं कई ने सौंदर्य में कितनों ने प्राणशक्ति के आधार पर अनेकों प्राकृतिक घटनाओ का पूर्व आभास पा लेने में अजीब क्षमता पाई तो कई स्वच्छन्द विचरण के क्षेत्र में आज के विज्ञान युग से भी अधिक पटु है किंतु एक साथ सारी विशेषताएं किसी को भी उपलब्ध नहीं

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और अनेकों आत्मिक संपदाएं मनुष्य में ही दिखाई देती है । मानव जीवन की इस सुव्यवस्था को देखते हैं तो लगता है कि यह किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही हुआ है एक ही स्थान पर अनेको शक्तियों का केन्द्रीकरण निश्चय ही अर्थपूर्ण है ।

मनुष्य को औरों की अपेक्षा अधिक बुद्धि, विद्या, बल और विवेक मिला है, यह बात तो समझ में आती है किंतु इन शक्तियों का संपूर्ण उपयोग बाह्य जीवन तक ही सीमित रखने में उसने बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया । अपने ज्ञान विज्ञान को शारीरिक सुखोपयोग के निमित्त लगा देने में उसने धोखा ही खाया है । दुखों का कारण भी यही है कि हम अपने शाश्वत स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते । नाशवान शरीर और इन्द्रिय जन्य विषयों की पूर्ति के गोरखधंधे में ही अपना सारा समय बर्बाद कर देते हैं और अंत समय सारी भौतिक संपदाएं यहीं छोड़कर चल देते हैं इस कटु सत्य का अनुभव सभी करते हैं किंतु अंतरंग कक्षा में प्रवेश होने से दूर भागते हैं । कभी यह विचार तक नहीं करते कि इस विश्वव्यापी प्रक्रिया का कारण क्या है ? हम क्या हैं और जीवन धारण करने का हमारा लक्ष्य क्या है ? ढेर सारी संपदाएं मिली हैं इसलिए कि इनका उपयोग अंतःदर्शन के लिए किया जाए । अपने को भी नहीं पहचान पाए तो इस शरीर का मौलिक शक्तियों का सदुपयोग क्या रहा ?

'मैं और मेरा शरीर दो भिन्न वस्तुएं हैं । एक कर्ता है, दूसरा कर्म, एक क्रियाशील है दूसरा जड़ । एक सवार है दूसरा वाहन । मानव जीवन की लक्ष्य प्राप्ति के लिए शरीर आत्मा का वाहन मात्र है । दोनों की एकरूपता का कोई आधार समझ में नहीं आता । यदि ऐसा होता तो मृत्यु के उपरांत भी यह शरीर क्रियाशील रहा होता ।

खाने पीने, उठने, बोलने चालने और जीवन के अनेकों व्यवसाय वह उसी तरह संपन्न करता जैसे जीवित अवस्था में । तब फिर उचित यही प्रतीत होता है कि अपने कर्त्तापन का ज्ञान प्राप्त करें । अपने वाहन को तरह तरह के रंगीन लुभावने आभूषणों से सजाते घूमें और आत्मतत्व उपेक्षित पड़ा रहे तो इसे कौन बुद्धिमत्ता की बात मानेगा ? घोड़ा घास खाए और सवार को पानी भी न मिले तो फिर यात्रा का उद्देश्य ही कहां पूरा हुआ ?

आत्मा की सिद्धियां अनंत हैं । स्वर्ग मुक्ति विराट् के दर्शन का केन्द्र बिन्दु आत्मा है । वह अनंत सामर्थ्यों का स्वामी है । इन्हें प्राप्त कर मनुष्य अणु से विभु, लघु से महान् बंधन मुक्त बनता है किंतु आत्मानुभूति किए बिना यह सब कुछ संभव नहीं । अपने नीचे की जमीन में ही असंख्यों मन सोना, चांदी, हीरा जवाहरात जमा हो और उसका ज्ञान न हो तो उस बहुमूल्य खजाने और मिट्टी के टीकरों में भला क्या अंतर रहा ? अपनी तिजोरी में रखी हुई पिस्तौल दुश्मन को नहीं मार सकती । जिस शक्ति का हमें ज्ञान ही न हो उसको प्रयोग में कैसे लाया जा सकता है ?

'आत्म दर्शन' भारतीय संस्कृति का प्राण है । यहां समय समय पर जो भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने आत्मज्ञान पर ही अधिक जोर दिया है । संपूर्ण वैदिक वांगमय इसी से ओत प्रोत है । जीवन की प्रत्येक व्यवस्था में अंतःदर्शन की बात अवश्य जोड़ दी गई है ताकि मनुष्य भौतिक जीवन जीते हुए भी आत्मतत्व से विस्मृत न रहे । अपने जीवनोद्देश्य को भी न भूलें । इसी पर सब मनीषियों ने देश, काल और परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न भिन्न रूप से बल दिया है । सभी महापुरुषों, ऋषियों, संतों और लोकनायकों ने मनुष्य को दुख और विनाश की परिस्थितियों से ऊंचा उठाने के लिए आत्मिक ज्ञान पर ही अधिक बल दिया है । भारतीय

जीवन में भौतिक संपदाओं की अवहेलना का भी यही अर्थ है कि मानवीय चेतना अपने मूल स्वरूप में पहचानने की दिशा में सतत् आरूढ़ रहे ।

आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप अत्यंत शुद्ध, पवित्र, अलौकिक और दिव्य है । उसकी अंतिम अवस्था धर्माचरण और ईश्वर साक्षात्कार है । यह शरीर के माध्यम से ज्ञान और प्रयत्न करने से मिलती है । शरीर को जब एक विशिष्ट उपकरण मानकर इन्द्रियों की दासता से ऊपर उठते हैं तो स्वयं ही आत्मानुभूति होने लगती है । जो आदमी इस तथ्य को गहराई तक अपने हृदय में बैठा लेता है वह नाशवान वस्तु के अनुचित मोह को त्यागकर आत्मिक पवित्रता की ओर अग्रसर होता है । ईर्ष्या, क्रोध आदि अनात्म तत्वों से उसकी रुचि हटने लगती है । विचार और व्यवहार में पवित्रता उत्पन्न होती है । जितना वह आत्म साक्षात्कार के समीप बढ़ता है उसी अनुपात से उसमें दैवी गुणों का समावेश होता चलता है । फलस्वरूप सच्चे सुख शांति और संतोष के परिणाम भी सामने आते रहते हैं ।

आत्म ज्ञान के लिए बड़े उपकरणों या अधिक से अधिक स्कूली शिक्षा की ही आवश्यकता नहीं । कोई भी व्यक्ति जो अपनी सामर्थ्यों या विवशताओं की विवेचना कर सके आत्मज्ञानी हो सकता है । इसके लिए आत्म निरीक्षण की आदत बनानी पड़ती है । यह कार्य ऐसा नहीं जो हर किसी से किया न जा सके । अपनी भूल, त्रुटियों और आदत में प्रविष्ट बुराइयों का अपने में दृढ़तापूर्वक खोजना और उन्हें दूर हटाना हर किसी के लिए संभव है । सन्मार्ग पर चलते हुए रास्ते में जो अड़चनें, बाधाएं और मुसीबतें आती हैं उन्हें धैर्यपूर्वक सहन करते रहने से अपनी समस्त चेतना का रूप आत्मा की ओर उन्मुख होने लगता है । जैसे बंदूक की गोली को

शांतिपूर्वक दूर तक पहुंचाने के लिए उसे छोटे से छोटे दायरे से गुजारा जाता है, वैसे ही अपनी समस्त चित्तवृत्तियों को एक ही दिशा में लगा देने से उधर ही आशातीत परिणाम दिखाई देने लगते हैं । जब तक अपनी मानसिक चेष्टाएं बहुमुखी होती हैं तब तक हम विपरीत परिस्थितियों से टकराते रहते हैं । किंतु जब एक ही दिशा में दृढ़तापूर्वक चल पड़ते हैं तो ध्येय प्राप्ति की साधना भी सरल हो जाती है ।

किसी विषय को जब तक मनुष्य भली भांति समझ नहीं लेता तब तक उससे झिझकता रहता है । घने अंधकार में जाने से सभी को भय लगता है । किंतु यदि अंधकार में जाने के लिए साथ में मशाल दे दी जाए तो अज्ञानता का भय अपने आप दूर हो जाता है । आत्मिक ज्ञान के प्रति भय की उपेक्षा और उदासीनता का कारण यही होता है कि अपना जीवन लक्ष्य निर्धारित नहीं करते । अनंत शक्तियों का केन्द्र होते हुए भी मनुष्य इधर से जितना उदासीन रहता है उतना ही दुख और अभाव उसे घेरे रहते हैं ।

सांसारिक ज्ञान प्राप्त करना ही अपना लक्ष्य रहा होता तो इसके लिए बुद्धि की चेतनता, एकाग्रता एवं जागरूकता ही पर्याप्त थी, किंतु आत्म ज्ञान का संबंध समस्त प्राणी मात्र में स्वानुभूति करने से होता है । अपने क्रिया व्यापार को जब तक आप अपने तक ही सीमित रखते हैं तब तक इस परम तत्व का आभास नहीं हो पाता । किंतु जब परमार्थ बुद्धि का समावेश होता है तो सारी ग्रंथियां स्वयमेव खुलने लगती हैं । जिस प्रकार अस्वच्छ शीशे में सूर्य की किरणों का परावर्तन नहीं होता वैसे ही स्वार्थपूर्ण अंतःकरण बनाए रखने में आत्मानुभूति संभव नहीं । इसलिए अपने आपको दूसरों के हित एवं कल्याण के लिए विकसित होने दीजिए । दूसरों के दुख दर्द, जिस दिन से आपको अपने लगने लगें उसी दिन से आपकी महानता भी

विकसित होने लगेगी । सभी के साथ प्रेम मैत्री, सहयोग सहानुभूति का स्वभाव बनाने से आत्मज्ञान का प्रकाश परिवर्द्धित होने लगता है । गीतकार ने लिखा है–

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्या सर्वभूतेषु कश्चिदथव्यापाश्रयः ॥

अर्थात्–आत्मवादी पुरुष का लक्ष्य है लोक हितार्थ कर्म करना । क्योंकि संपूर्ण प्राणियों के स्वार्थ का कोई संबंध नहीं है । सभी विश्वचेतना के ही अंग हैं, फिर किसी के प्रति पराएपन का भेदभाव क्यों करें ? अपने ही सुखों को प्रधानता देने में जो क्षणिक आनंद अनुभव कर इसी में लगे रहते हैं, उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे आत्मोद्धार कर लेंगे । पर जिसे अपना मानव जीवन सार्थक बनाना है, जिसने अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लिया उसके लिए यही उचित है कि वह खुले मस्तिष्क से सभी में अपने आपको ही रमा हुआ देखे । ऐसी अवस्था में किसी को दुख देने या उत्पीड़ित करने की भावना भला क्यों बनेगी ?

आत्मज्ञान और आत्मानुभूति के मूल उद्देश्य को लेकर ही हम इस संसार में आए हैं । मानव जीवन की सार्थकता भी इसी में है कि वह अपने गुण, कर्म और स्वभाव में मानवोचित सदाचार का समावेश करे और लोकहित में ही अपना हित समझे । मनुष्य एक विषय है तो संसार उसकी व्याख्या । अपने आपको जानना है तो संपूर्ण विश्व के साथ अपनी आत्मीयता स्थापित करनी पड़ेगी । आत्मा विशाल है, वह एक सीमित क्षेत्र में बंधी नहीं रह सकती । संपूर्ण संसार ही उसका क्रीड़ाक्षेत्र है । अपनी चेतना को विश्वचेतना के साथ जोड़ देने से आत्म ज्ञान का प्रकाश स्वतः प्रस्फुटित होने लगता है ।

इस प्रकार जब मनुष्य सांसारिक तथा इंन्द्रियजन्य परतंत्रता से मुक्त होने लगता है तो उसकी महानता विकसित होने लगती है ।

आत्मा की स्वतंत्रता परिलक्षित होने लगती है, आत्मबल का संचार होने लगता है । स्वाभाविक पवित्रता और प्रफुल्लता का वातावरण फूट निकलता है । आत्मा की गौरवपूर्ण महत्ता प्राप्त कर मनुष्य का ऐहलौकिक उद्देश्य पूरा हो जाता है । अपने लिए भी यही आवश्यक है कि हम अपनी इस प्रसुप्त महानता को जगाएं, इसके लिए आज से और अभी से लग जाएं ताकि अपने अवशेष जीवन का सच्चा सदुपयोग हो सके ।

शक्ति का स्त्रोत-आत्मा को मानिए

हमारे पुरखे ज्ञान विज्ञान में आज के वैज्ञानिकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रवीण थे, किंतु वे समझते थे विज्ञान अंततोगत्वा मनुष्य की वृत्तियों को पाशविक, भोगवादी ही बनाता है । अतः उन्होंने धर्म और अध्यात्म पर आधारित जीवन की रचना की थी । इस जीवन में प्राण था, शक्ति थी, समुन्नति थी और वह सब कुछ था जिससे मनुष्य का जीवन पूर्ण सुखी, स्वस्थ और संतुष्ट कहा जा सकता है ।

आत्मा को ही सब कुछ मानकर अनित्य और शरीर के प्रति वैराग्यमूलक मनोवृत्ति धारण कर लेने की शिक्षा देना हमारा उद्देश्य भले ही न हो किंतु भौतिक सुख और इंद्रियों की पराधीनता भी मनुष्य जीवन के लिए नितांत उपयोगी नहीं कहे जा सकते । आत्म ज्ञान की आवश्यकता इसीलिए है कि उससे सांसारिक विषयों में स्वामित्व और नियंत्रण की शक्ति आती है । भौतिक सुखों की रथ के उन घोड़ों से तुलना की जा सकती है जिनमें यदि आत्म ज्ञान की लगाम न लगी हो तो वे सवार समेत रथ को किसी विनाश के गड्ढे में ही ले जा पटकेंगे । जगत् की सत्ता से विच्छिन्न मनुष्य की सत्ता व्यक्ति परिच्छिन्न मात्र नहीं है, वह केवल व्यष्टि ही नहीं वरन समष्टि भी है । उसमें अनंत सत्य शिव और सौंदर्य समाहित है, उसे जाने बिना मनुष्य के बाह्यांतरिक कोई भी प्रयोजन पूरे नहीं होते । आत

ज्ञान, इसलिए मनुष्य जीवन का प्रमुख लक्ष्य है ।

शरीर के संपूर्ण अंग प्रत्यंगों की स्थूल जानकारी, पदार्थ और उनके गुण भेद की जानकारी, ग्रह नक्षत्रों से संबंधित गणित और वैज्ञानिक तथ्य जानने से मनुष्य की सुविधाएं भले ही बढ़ गई हों, पर उसने अपने आप का ज्ञान प्राप्त नहीं किया यही दुख का प्रधान कारण है । मनुष्य शरीर ही नहीं, वरन् परिस्थितियां बताती हैं कि वह कुछ अन्य वस्तु भी है, आत्मा है । इस आत्मा या अहभाव का ज्ञान प्राप्त किए बिना दुनियां का सारा ज्ञान विज्ञान अधूरा है । बिना इंजन लगी हुई मोटर की तरह वह ज्ञान किसी तरह का लाभ नहीं दे सकता है ।

आत्मा शक्ति का अनादि स्रोत है । शौर्य, प्रेम और पौरुष की अनंत शक्ति उनमें भरी हुई है । अतः आत्म ज्ञान में लगाए हुए समय श्रम और साधनों को निरर्थक नहीं बताया जा सकता । आत्म शक्ति को पाकर मनुष्य के सारे अभाव, दुख दारिद्र्य, सांसारिक आधि व्याधियां समाप्त हो जाती हैं । भगवान कृष्ण ने आत्मज्ञानी पुरुष को ही सच्चा ज्ञानी बताते हुए कहा है–

उत्क्रामन्त स्थिति वापि भुंजानं वा गुणन्तिम् ।
बिमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥

–गीता १५/१०

अर्थात्–हे अर्जुन ! उस आत्मा को शरीर छोड़कर जाते हुए, शरीर में स्थित हुए, विषयों को भोगते हुए अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए भी अज्ञानी लोग नहीं जानते । यह तत्व रूप आत्मा को केवल ज्ञानी ही जानते हैं ।

मनुष्य शरीर नहीं वरन् वह शरीर का संचालक है, वह मन ही नहीं क्योंकि मन को प्रेरणा देकर, किसी भी अच्छे बुरे कर्म में लगाया जाता है । सत असत का ज्ञान देने वाली बुद्धि को भी आत्मा

कैसे मानें ? विश्लेषण करने पर पता चलता है यह शरीर, इंन्द्रिय, मन, बुद्धि पंचभूतों के सत रज अंश लेकर बने हैं । पंचभूत जड़ पदार्थ हैं, अतः आत्मा इससे भी विलक्षण और शक्तिमान है । वह संचालक है, सूक्ष्म तम है और शक्ति का उत्पादक, अजर अमर सर्वव्यापी तत्व है । जो इस तत्व को जानता है उसके सारे दुख मिट जाते हैं ।

मानव जगत का अधिकांश भाग इस कारण अधोगति को प्राप्त हो रहा है कि उसे जो कार्य संपादन करना चाहिए, वह नहीं करता । सबसे बड़े दुख की बात तो यही है कि पूर्ण परिपक्व और बुद्धिमान होते हुए भी उस मार्ग का अनुसरण नहीं करते जो कल्याणकारी है और जो जीवन में सुख की वृद्धि कर सकता है । थोड़ से मोह के चक्कर में फंसकर नासमझ लोग अयोग्य कार्यों की ओर प्रेरित होते हैं और उन्हें ही सुख का मलू समझकर अपने भीतर सिमटी दुबकी हुई जो आत्मा बैठी है उसे भूल जाते हैं । इसी ऐश्वर्य और भोग में जीवन की इतिश्री कर देते हैं । कभी गहराई में उतरकर आत्मतत्व पर विचार नहीं करते । मनुष्य की इस विडंबना को इस मूढ़ता को क्या कहें जो बड़ा ज्ञानी होने का दावा करता है पर जानता खुद को भी नहीं है ।

सारांश यह है कि जड़ पदार्थों के संबंध में आज लोगों ने खूब उन्नति की है, पर चेतन पदार्थों के संबंध में वह उसी प्रारंभिक अवस्था में ही है । विज्ञान ने भौतिक एवं मानसिक जगत को रुपांतरित कर दिया है उसका प्रभाव मनुष्य पर गंभीर रूप से पड़ा है क्योंकि आज जो कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं उनमें मनुष्य की मूल प्रकृति पर विचार नहीं किया जाता । यही कारण है कि भौतिक विज्ञान तथा रसायन शास्त्र ने परंपरागत जीवन प्रणाली में विक्षिप्त रूप से परिवर्तन ला दिया है । मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति की

कसौटी पर ही विषयों का चयन किया जाता तो अधिक बुद्धिमत्ता रहती । आत्म ज्ञान ही वह प्रक्रिया है जिससे इस समस्या का हल निकाला जा सकता है ।

बाहर की वस्तुओं का ही अवलोकन न कीजिए यह भी सोचिए कि शरीर के भीतर कैसी विचित्र हलचल चल रही है । आहार पेट में जाता है फिर न जाने कैसे वह रस, रक्त, मांस, अस्थि आदि सप्त धातुओं में परिणत हो जाता है । कितनी हानिकारक वस्तुओं का भक्षण करते हुए मनुष्य जीवित रहता है । वह कौन सा विलक्षण अमृत तत्व है जो शरीर जैसी महत्वपूर्ण मशीनरी को चला रहा है । आप इसे जान जाएंगे तो सारे संसार को जान जाएंगे । उस आत्मा में ही यह संपूर्ण विश्व व्यवस्थित है । ब्रह्मोपनिषद् के छठवें अध्याय में शास्त्रकार ने बताया है–

आत्मनोन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममयं जगत् ।
आत्मनोऽन्यन्नहि क्वापि आत्मनोऽन्यतृर्णन हि ॥

–ब्र० उ० ६ / ६

अर्थात्–आत्मा से भिन्न गति नहीं है, सब जगत आत्मामय है । आत्मा से विलग कुछ भी नहीं है, आत्मा से भिन्न तिनका भी नहीं ।

विश्वव्यापी चैतन्य अनादि तत्व आत्मा को जाने बिना मनुष्य को शांति और स्थिरता की उपलब्धि नहीं हो सकती । सफल जीवन जीने के अभिलाषी को इस पर बारबार विचार करना चाहिए । प्राचीन धर्म ग्रंथ, सृष्टि और अध्यात्म की खोज करनी चाहिए । अपने आपको पहचानने के लिए अपनी आत्मा, मनोवृत्तियां, स्वभाव तथा विचारों का निरीक्षण करना चाहिए । आत्म भाव जाग्रत करने के लिए सुंदर पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिए ।

आत्मा के साथ जन्म मरण, सुख दुख, भोग रोग आदि

की जो अनेक विलक्षणताएं विद्यमान हैं, वह मनुष्य को यह सोचने के लिए विवश करती हैं कि खा पीकर, इन्द्रियों के भोग भोग कर दिन पूरे कर लेना मात्र जिंदगी का उद्देश्य नहीं है । रूप और शारीरिक सौन्द्रर्य की झिलमिलाहट में शरीर और प्राण के अनुपम संयोग की स्थिति को दूषित किया जाना किसी भी तरह भला नहीं है । यह अमूल्य मानव जीवन पाकर भी यदि आत्म कल्याण न किया जा सका तो न जाने कितने वर्षों तक फिर अनेकों कष्ट साध्य योनियों में भटकना पड़ेगा । जिसे ऐसी बुद्धि मिल जाए उसे अपने आपको परमात्मा का कृपा पात्र ही समझना चाहिए । आत्म ज्ञान प्राप्त करने से ही मनुष्य जीवन धन्य हो जाता है ।

मनुष्य दैवी शक्तियुक्त है सत् चित् आनंद स्वरूप है निष्फलता, दुख, रोग शोक तो निम्न विचारों, कल्पनाओं तथा भोगवादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप पैदा होते हैं अन्यथा इन अभावों को इस जीवन से क्या प्रयोजन । अपने अमृतत्व की खोज करने के लिए काम, क्रोध, भ्रम, लोभ, तिरस्कार, शंका तथा द्विविधाओं की कीचड़ से निकालकर हमें सत्य, प्रेम, निश्छलता और पवित्रता का आदर्श अपनाना पड़ेगा । उत्कृष्ट स्वस्थ तथा दिव्य विचारों का वरण करना होगा । आत्मा अत्यंत विशाल और अविनाशी है उसे प्राप्त करने के लिए उसमें विलय होने के लिए हमें भी उतना ही निर्मल हितकारक तथा विस्तृत बनना होगा । जिस दिन ऐसी स्थिति बना लेंगे उस दिन किसी तरह की कमी महसूस नहीं होगी । अपने भीतर छिपी हुई आत्मा को खोजने का प्रयास करें तो वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं जिसकी तलाश में हमें निरंतर भटकना और जिसके अभाव में सदा दुखी रहना पड़ता है ।

आनंद का मूल स्त्रोत अपने अंदर है

आत्मा की आदि आकांक्षा का नाम आनंद है । मनुष्य से लेकर कीट पतंग तक जितने प्राणी पाए जाते हैं सभी आनंद की इच्छा करते हैं । प्राणियों का जीवन ही आनंद और उसकी आशा अभिलाषा पर टिका हुआ है । मनुष्य स्वयं आनंद स्वरूप है । संसार के माया जाल में उसका यह स्वरूप खो गया है । वह उसको ही खोजने और पाने का प्रयत्न कर रहा है । उसका समग्र जीवन क्रम आनंद पाने का ही एक उपक्रम है मनुष्य यदि सुख भोगों में व्यस्त होता है तो आनंद के लिए और यदि सहिष्णु बनकर कष्ट उठाता है तो आनंद की आशा से । आनंद वांछनीय भी है और मानव जीवन का ध्येय भी ।

आनंद की दो प्रकार श्रेणियां मानी गई हैं । एक उत्कृष्ट और दूसरी निकृष्ट । जिनको सांसारिक अथवा विषयिक तथा आध्यात्मिक अथवा आत्मिक भी कहा जा सकता है । आनंद और सुख शांति की अभिलाषा तो सभी करते हैं । किंतु वह वांछनीय आनंद कौन सा है, किस श्रेणी और स्तर का है, यह बात प्रायः कम लोग ही समझ पाते हैं । मनुष्य का वांछनीय आनंद वस्तुतः आध्यात्मिक आनंद ही है । जबकि लोग उसे भूलकर सांसारिक आनंद को खोजने, पाने में लग जाते हैं । सांसारिक अथवा विषयिक आनंद मृगतृष्णा के समान मिथ्या और अतृप्तिकर होता है । यह सत्य तथा वास्तविक होता है । इसे पाने पर आनंद की इच्छापूर्ण रूप से परितृप्त होकर तिरोधान ही होती है । मनुष्य को सच्चे संतोष और संपूर्ण तृप्ति के लिए आध्यात्मिक आनंद की ही वांछा करनी चाहिए और उसी को संग्रह करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

सांसारिक अथवा विषयिक आनंद पदार्थों तथा परिस्थितियों पर निर्भर रहते हैं । इस विषयिक आनंद के भ्रम जाल में बह जाने वाले लोगों को निम्न मनो स्तर का व्यक्ति मानना पड़ेगा और खेद करना पड़ेगा कि ऐसे लोग घटिया और बढ़िया, निकृष्ट और उत्कृष्ट, निम्न और श्रेष्ठ के बीच रहने वाले अंतर का महत्व नहीं जानते और घटिया अथवा सस्तेपन के प्रभाव में बह जाते हैं । अनस्तरीय व्यक्ति भोजन, वस्त्र, रहन सहन, विषय भोग और हास विलास में मिलने वाले मनोरंजन और क्षणिक तृप्ति को ही आनंद मान बैठते हैं और उन्हीं के बीच उसे पाने के लिए दिन रात कोल्हू के बैल की तरह जुटे रहते हैं । इसी भ्रामक प्रयास में सारी जिंदगी गुजार देते हैं और वांछनीय वास्तविक आनंद की झलक तक पाए बिना संसार से बिदा होकर चले जाते हैं और अतृप्ति तथा तृष्णा के प्रतारण से फिर संसार चक्र में आकर फंस जाते हैं ।

सामान्य श्रेणी के लोग सोचते हैं कि खूब अच्छा, स्वादिष्ट और सरल भोजन मिलता रहे तो कितना आनंद रहे । आनंद का निवास खूब खाने और मौज उड़ाने में है, अपनी इसी मान्यता के कारण वे अच्छे से अच्छे भोजन और विविध प्रकार के व्यंजनों का संग्रह करते हैं । बार बार रसों का स्वाद लेते और कोशिश करते हैं कि उन्हें संतोष और परितृप्ति का आनंद मिले किंतु खेद है कि उन्हें अपने इस प्रयास में निराश ही होना पड़ता है । एक दो बार तो रस और व्यंजन कुछ अच्छे भी लगते हैं कितु उसी लोभ में पुनः आवृत्ति किए जाने से उसका स्वाद जबाव दे जाता है, रस फीका पड़ जाता है । तब उनका उपभोग करने में न तो किसी प्रकार की परितृप्ति रहती है और न नवीनता । वे सर्वथा नीरस बनकर उबा देने वाले

बन जाते हैं । विचार करने की बात है कि यदि भोज्य पदार्थों में वास्तविक आनंद होता तो तीसरी चौथी आवृत्ति में ही वह रस अपनी विशेषता न खो देते । भोजन तो जीवन रक्षा की एक सामान्य आवश्यकता है जो किन्हीं भी उचित पदार्थों से पूरी की जा सकती है । उसमें अथवा उसके प्रकारों में वास्तविक आनंद की आशा करना दुराशा के सिवाय और कुछ नहीं है । आवश्यकता की पूर्ति हो जाने और क्षुधा का कष्ट मिट जाने से जो सरलता प्राप्त होती है वही उसकी विशेषता है, बस इसके आगे उसमें आनंद नाम की कोई वस्तु नहीं है । भोजन की इस विशेषता को वास्तविक आनंद मान लेना और उसमें चिपटे रहना किसी प्रकार भी बुद्धिमानी नहीं है । इसको निम्नस्तरीय वृत्ति के परिचय के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

भोजन की भांति लोग वस्त्रों में भी आनंद की खोज करते हैं । तरह तरह के पट परिधान पहनकर जिस प्रदर्शन जन्य संतोष को लोग पाते हैं उसे ही आनंद मान बैठते हैं । लोग यह सोचकर वस्त्रों पर एक बड़ी धनराशि खर्च करते रहते हैं कि अच्छे अच्छे कीमती कपड़े पहनने से हम बड़े ही सुंदर और शोभायमान लगेंगे । दूसरे हमारी वेश भूषा देखकर प्रभावित होंगे और बड़ा आदमी समझेंगे । अपने प्रति लोगों का यह विस्मय और आकर्षण आनंददायक होगा, ठीक है ! ऐसा होता भी है । उसी तरह के लोग दूसरों की दर्शनीय वेश भूषा देखकर आकर्षित, प्रभावित तथा लालायित होते हैं लेकिन इसमें वास्तविक आनंद की क्या बात हुई ? जिसके लिए किसी का कौतूहल, विस्मय अथवा आनंद का कारण बन सकता है वह उच्च मनोभूमि वाला नहीं माना जा सकता । किसी का विस्मय और

कौतूहल तो अज्ञान का द्योतक होता है और आकर्षण प्रभावहीनता का । इनमें से किसी की कोई भी दशा किसी बुद्धिमान आदमी के लिए दया अथवा खेद की बात हो सकती है, हर्ष और आनंद की नहीं । आनंद की आशा में वस्त्रों पर जरूरत से ज्यादा खर्च करना व्यर्थ है । वस्त्र तो शरीर रक्षा और तन छिपाने का एक उपकरण मात्र होते हैं । भोजन की तरह वस्त्र भी शरीर की एक सामान्य आवश्यकता है जिसको पूरा करना ही पड़ता है । आवश्यकता की पूर्ति में एक सामान्य सुविधा के सिवाय आनंद नाम की कोई बात नहीं होती । ओछी और हल्की मनोभूमि वाले ही वस्त्रों के प्रदर्शन में किसी सुख का अनुभव कर सकते हैं । सो भी क्षणिक, मिथ्या और वंचक सुख ।

संसारी लोग रहन सहन के उच्च स्तर को भी आनंद का हेतु मान लेते हैं । वे सोचते हैं कि जितना आलीशान मकान होगा, जितनी बिजली की रोशनी और पंखे की हवा होगी, जितने सोफे, गद्दे, पलंग और तकिए होंगे, जितने आभूषण अलकार और साज शृंगार के उपकरण होंगे उतना ही आनंद प्राप्त होगा । अपनी इसी धारणा के अनुसार वे एक बड़ी सी कोठी में साज सामान की दुकान सी लगा देते हैं । बेजरूरत के सामान से उनके मकान के कोठे पर कोठे भरे रहते हैं । जितना काम आता है उससे अधिक पड़ा पड़ा खराब होता रहता है । पता नहीं भंडारवाद में लोगों को क्या आनंद मिलता है ? सत्य बात तो यह है कि उसमें आनंद तो क्या मिलता है, उल्टे उस अनावश्यक साज सामान की साज संभाल और रक्षा बचाव की एक परेशानी यह होती है कि एक सामान के टूट जाने अथवा पुराना हो जाने पर उसे स्थानापन्न करने के लिए खर्च की

चिंता करनी पड़ती है । बहुत बार तो लोग आनंद की भ्रांत धारणा के कारण कुत्सित मार्गों तक पर चले जाते हैं । उनके पास इस साज सामान के लिए अथवा उसे बनाए रखने के लिए पैसे की कमी हो जाती है तो वे शोषण, बेईमानी, ठगी और भ्रष्टाचार की ओर बढ़ जाते हैं । ऐसे उपायों से आनंद की आशा करना उतना ही उपहासास्पद है जितना असंयमी के स्वस्थ रहने की आशा । मकान और उपहार रहायश इसकी सुविधा के सामान्य से उपकरण हैं, जिनकी सहायता से प्राकृतिक परिवर्तनों से अपने को बचाया और सुरक्षा पूर्वक रहा जा सकता है । यदि बड़े मकानों और अनावश्यक भंडारों में आनंद हो तो संसार में ऐसे हजारों लाखों व्यक्ति हैं जो भवन और भंडारों के नाम पर धनकुबेर कहे जाते हैं । किंतु क्या वे सुखी हैं ? यदि उनका वह अनावश्यक सरंजाम आनंद का उत्पादन कर सकता तो उनके पास शायद आनंद का इतना स्टाक हो जाता कि यदि वे चाहते तो उसका व्यवसाय कर सकते थे । साज सरंजाम में आनंद की कल्पना करना और उसके संचय के लिए व्यर्थ जान मारना बुद्धिमानी नहीं है ।

मनोरंजन और हास विलास में किसी हद तक आनंद तो क्या उनके इर्दगिर्द घूमने वाले किसी सुखद तत्व की कल्पना की जा सकती है । लेकिन तभी जब मनोरंजन के साधन और स्तर उच्चकोटि के हों । अन्यथा निम्नकोटि का मनोरंजन और हास विलास मनुष्य को अश्लील, अस्वस्थ, अभद्र ही नहीं, आचरण हीन तक बना डालता है । बहुत से पदार्थ सुखों के विश्वासी मनोरंजन के नाम पर व्यभिचारी और व्यसनी तक बन जाते हैं । विषय भोग तो उनके लिए नित्य प्रति की बात बन जाती है ।

यदि कोई यह धारणा रखता है कि नशे में मस्त होकर संसार के विषय भोगे जाएं तो बहुत कुछ आनंद की उपलब्धि हो सकती है तो उसकी बुद्धि पर तरस खाना होगा । नशे तो जीवन की हरियाली के लिए आग और विषय साक्षात् विष माने गए हैं । इनका सेवन करने वाला आनंद के स्थान पर मृत्यु के हेतु ही लग जाता है । संसार में ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है कि विषय भोगों और हास विलासों के कार्यक्रमों में आनंद की खोज करने के लिए दिन रात लगे रहते हैं । किंतु उन अबोधों का परिणाम दारिद्र्य तथा अकाल मृत्यु के सिवाय और कुछ नहीं होता । मनोरंजन और हास विलास के नाम पर विषयों और व्यसनों के बंदी बन जाने वाले लोग आनंद मृग तृष्णा में भूलते भटकते हुए जीवन का दांव हार जाते हैं ।

आत्मा की आनंददायक गहराई में मनुष्य तभी उतर पाता है जब वह संसार के आवश्यक कर्तव्यों से निवृत्त होकर उससे अपने को मुक्त कर लिया करता है और निवृत्ति के क्षणों में निश्चित तथा निर्विकार होकर आत्म चिंतन किया करता है । आत्म चिंतन तभी संभव होता है जब मनुष्य सांसारिक मृग तृष्णा में अपने को कम से कम उलझाता है और जितना उलझाता भी है उतने में ही निस्पृह रहता है । जो सांसारिक पदार्थों और वासनात्मक विषयों की पूर्ति में आनंद की संभावना देखते हैं वे उसमें इस हद तक उलझे रहते हैं कि आत्मचिंतन करने का अवकाश ही नहीं रहता । यह बात सही है कि संसार के विषय भी किसी हद तक आवश्यक होते हैं । उनका भाग उन्हें मिलना ही चाहिए किंतु उनको जीवन का ध्येय नहीं बना लेना चाहिए ।

आंतरिक सुख ही वास्तविक सुख

सुख का मूल स्रोत पदार्थ और साधन नहीं आत्मा है । आनंद का निर्झर अपने भीतर फूटता है । सांसारिक भोग विलासों और विषय वासनाओं में सुख की खोज करना न केवल अपना समय ही नष्ट करना है बल्कि शक्तियों का नाश करना भी । यह बात सही है कि संसार में रहकर सांसारिक गतिविधियों से बचा नहीं जा सकता । उनमें चाहते अथवा न चाहते हुए भी पड़ना ही होता है । तब भी उनमें पड़कर भी शोक संताप से बचे रहने का एक ही उपाय है कि अपने व्यक्तित्व को आध्यात्मिक सांचे में ढाल लिया जाए । आध्यात्मिक अर्थात् अंतर्मुखी वृत्ति का सहारा लेकर चलने वाला व्यक्ति इस दुख पूर्ण संसार में सदा सुखी ही बना रहता है ।

अध्यात्म जीवन का एक विशिष्ट पहलू है उसकी उपेक्षा करके यथार्थ की प्राप्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता । फुटबाल का खिलाड़ी गेंद उछाल सकता हो किंतु उसके साथ दौड़ न सकता हो तो वह गोल नहीं कर सकता । विद्यार्थी को पुस्तकें भी पढ़नी पड़ती हैं और पाठों का लिखित अभ्यास भी करना पड़ता है । मल्लाह नदी में तब उतरता है जब वह नाव चलाने के साथ संकट में तैर सकने की कला भी सीख लेता है । दिन और रात, प्रकाश और अंधकार, भूत और भविष्यत की तरह बाह्यांतर जीवन के दो पहलू हैं । उनमें से केवल एक बाह्य जीवन, पदार्थमय जीवन को ही प्रमुख मानकर सुखी नहीं रहा जा सकता । आंतरिक तथा भावनात्मक जीवन को भी स्थिर, शुद्ध, पवित्र और क्रियाशील किए बिना सुख की कल्पना व्यर्थ है ।

आध्यात्मिकता के आधार पर पाया हुआ सुख ही सच्चा और

वास्तविक सुख है । जो सांसारिक सुखों में, सांसारिक भाव से पड़ा रहता है वह उसके दुखों से कभी उबर नहीं पाता । आध्यात्मिक विचारधारा वाला व्यक्ति सांसारिक झगड़ों से ऊपर रहता है । उनके अशिव प्रभाव से अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते रहने में कभी प्रमाद नहीं करता । संयोगवश यदि उसके सामने दुख की परिस्थिति आ भी जाती है तो वह उसको भी सुख की तरह निर्लिप्त भाव से भोग डालता है और पानी में कमल की भांति उनसे अलग ही रहता है । ऐसे उन्नत व्यक्तित्व वाले लोगों को वैसी स्थिति में कितना सुख होता होगा इसको तो एक आध्यात्मिक व्यक्ति ही जानता है ।

वास्तविक सुख का स्वरूप, आत्म संतोष, आत्मानंद, आत्म विकास और आत्म कल्याण ही माना गया है । ऐसा दिव्य सुख संसार की भोग वासनाओं में लिप्त रहने में कहां ? यह तो विषयों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक जीवन अपनाने से ही प्राप्त हो सकता है । आध्यात्मिक जीवन क्या है ? वह है सद्‌भावनाओं से ओत प्रोत जीवन को लोकहित की दृष्टि से यापन करना, झूठे स्वार्थों में लिप्त होकर वासनाओं, तृष्णाओं से ग्रसित न रहकर परमार्थ, परहित और परोपकार में संलग्न रहना आध्यात्मिक जीवन माना गया है । स्वार्थांध होकर दूसरों का अधिकार छीनना, अन्यायपूर्वक अपना भला करना, अविश्वास, निंदा, घृणा आदि की गर्हित भावनाओं से भरा जीवन ही नारकीय जीवन है । जो अज्ञान अथवा मोहवश इस क्रम को अपना लेता है वह न केवल लोक में ही दुखी रहता है बल्कि परलोक में भी उसे सुख शांति के लिए कलपना नहीं पड़ता ।

आध्यात्मिक भाव की सिद्धि करने के लिए मनुष्य को अपना व्यक्तित्व उज्ज्वल, निर्मल और निर्दोष बनाना पड़ेगा । दोष, पाप

और मल की विद्यमानता ही व्यक्तित्व को गंदा और अपवित्र बना देती है । जितना जितना इन कलुषों को घटाया मिटाया जाएगा उतना उतना ही अंतर्ज्योति दीप्त होती चलेगी और उसके प्रकाश में व्यक्तित्व ऊपर उठता चला जाएगा । जिसके साथ ही आत्मा में सुख शांति, संतोष और श्रेय की स्थापना होती जाएगी । व्यक्तित्व विकास में आध्यात्मिक जीवन की सभी संभावनाएं निहित रहा करती हैं ।

माया मोह, स्वार्थ और अर्थ प्रधान नीति का मारा मनुष्य सच्ची सुख शांति का मार्ग भूल जाता है । वह दिन दिन संकीर्णता की परिधि में बंदी होकर अपने लिए दुख के कारण ही संचय करता रहता है । ऐसा संकीर्ण व्यक्ति परिस्थितियों का दास बन जाता है और जीवन के वास्तविक सौंदर्य से भी वंचित हो जाता है । उसकी रुचियां, दूषित, भावनाएं अमानवीय और लोक कल्याण के लिए आवश्यक गुणों, प्रेम, त्याग, सहायता, सहयोग और सहानुभूति की सीमाएं संकुचित हो जाती हैं । ऐसे नागपाश से बंधा व्यक्ति भला किस प्रकार सुखी रह सकता है ।

जो अनाध्यात्मिक व्यक्ति भौतिक विभूतियो का दास बना रहता है उसे उसकी परिस्थितियां दुख सुख के बीच कठपुतली की तरह नचाया करती है । ऐसा व्यक्ति सुख चैन की एक सांस के लिए भी लालायित बना रहता है । धन का मद मनुष्य को न्याय अन्याय की ओर से अंधा बना देता है । वह हर समय निन्यानवे के फेर में पड़ा दुखी बना रहता है । वह सुख की आशा से धन के ढेर लगाता चला जाता है पर उसका परिणाम उसके लिए विपरीत ही सिद्ध होता है । धन का ढेर उसके लिए मुसीबत का कारण बन जाता है । चोर, डाकुओं, ठगों और सरकार का डर तो बना ही रहता है । उसकी

बढ़ोत्तरी और रक्षा की चिंता के साथ साथ यह चिंता भी खाती रहती है कि इस संपत्ति का यदि उत्तराधिकारी योग्य न निकला तो उसकी जन्म भर की कमाई नष्ट हो जाएगी और तब परलोक में भी उसकी आत्मा को चैन न मिलेगा । धन को साधन न मानकर साध्य मानने वाले लालचियों को धन पाले हुए सर्प की तरह हर समय चिंता और आशंका का विषय बना रहता है ।

इसके विपरीत उच्चाशयी आध्यात्मिक व्यक्ति धन को हाथ का मैल और श्रम का पारिश्रमिक मानते हैं । उनकी दृष्टि में धन का महत्व साधन से अधिक कुछ नहीं होता । वे जो कमाते हैं उसको भौतिक भोगों में न लगाकर उसका अपने और अपने समाज के लिए सदुपयोग करते हैं । वे लक्ष्मी को छाया की तरह चंचल मानकर उसके साथ आसक्ति का भाव नहीं जोड़ते । ऐसे निस्पृह नर रत्न धन के आवागमन में समभाव में स्थित निश्चितता का आनंद लिया करते हैं ।

मानव जीवन का ध्येय आनंद ही है । आनंद की आकांक्षा उचित ही है । किंतु है यह वहीं तक उचित जहां तक इसका संबंध जीवन की वास्तविक सुख शांति से है । मिथ्या, आनंद का भाव लेकर जगी हुई कामनाएं अनुचित एवं अवांछनीय हैं इसलिए कि यह मनुष्य को मृगतृष्णा में भटकाकर उसका बहुमूल्य मानव जीवन नष्ट कर डालती है । आनंद आत्मा का विषय है, शरीर का नहीं । उसकी प्राप्ति जीवन को जनहित, लोकमंगल और विश्व कल्याण में समाहित कर देने पर ही होती है । व्यष्टि को समष्टि में समाहित कर देना ही आध्यात्मिक जीवन है । इसको ग्रहण करते ही आत्मा में दिव्य ज्योति के दर्शन होने लगते हैं । अनंत और अक्षय आनंद के कोष खुल जाते हैं । इसलिए आत्मिक अथवा आध्यात्मिक सुख को

ही सारे सुख का मूल और मानव जीवन का साध्य माना गया है। लौकिक कामनाओं की पूर्ति से प्राप्त होने वाल सुख, मिथ्या, वंचक और क्षणभंगुर माना गया है।

परिष्कृत व्यक्तित्व और आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति सांसारिक सुख दुखों को चलती फिरती छाया से अधिक महत्व नहीं देते हैं। वे इस वास्तविकता से अनभिज्ञ नहीं होते कि सुख दुख, अनुकूलता प्रतिकूलता की धनात्मक एवं ऋणात्मक परिस्थितियों में तपकर ही मानव जीवन पुष्ट होता है। अस्तु, वे जीवन की इस घूप छांह से कभी प्रभावित नहीं होते। जीवन में जो जैसी परिस्थिति जब तब आती है, वे उसका हंसी खुशी के साथ सामना करते हैं। वे संसार की हर परिस्थिति को ईश्वर का वरदान मानकर सदैव प्रसन्न एवं संतुष्ट ही बने रहते हैं। वे सुख में प्रसन्न और दुख में रोने की बालवृत्ति से ऊपर उठे रहते हैं। वे संसार की इस परिवर्तनशीलत के बीच अपनी एक सी दुनियां बसाने की आकांक्षा और केवल सुखों की कामना को पोषण करते रहने की भूल नहीं करते। वे इस सांसारिकता से ऊपर उठकर आत्मिक जीवन में जीते और प्रसन्न रहते हैं।

जीवन का वास्तविक सुख आध्यात्मिक जीवनक्रम में ही प्राप्त हो सकता है। इसमें जरा भी संदेह नहीं। तथापि सच्चा अध्यात्मिक जीवन भी यों ही प्राप्त न हो जाएगा। उसके लिए भी मनुष्य को साधना करनी पड़ती है। थोड़ी सी पूजा कर लेना, सत्यनारायण की कथा सुन लेना अथवा किसी पुस्तक का पारायण करना भर ही आध्यात्मिक जीवन नहीं कहा जा सकता। आध्यात्मिक भाव की प्राप्ति तो तभी होती है जब मनुष्य अपने अंतर बाह्य दोनों को पवित्र और

उज्ज्वल बनाए । मानव मन में न जाने कितने दोष दुरित चोर की तरह बैठे रहते हैं । बहुत बार उनका पता भी नहीं चलता । यही निर्बलताएं कदम कदम पर आध्यात्मिक पथ पर रोड़े अटकाती रहती हैं । इस अवरोध के विषय में बहुधा अज्ञानवश भ्रम हो जाता है कि कोई बाहरी शक्ति हमारी प्रगति में रोड़ा अटका रही है किंतु वास्तविकता इससे भिन्न होती है । मनुष्य के अपने मानसिक दोष ही उसके पथ में रोड़ा बन कर अटकते रहते हैं । अस्तु आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि के लिए मानसिक परिष्कार बहुत आवश्यक है । हमें खोज खोजकर असद्‌भावनाओं, मलीन विचारों और ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह आदि आवेगों को अपने अंतःकरण से निकाल निकाल कर फेंकते रहना चाहिए । स्वार्थ, विडंबना और प्रवंचनापूर्ण गतिविधियां आध्यात्मिक जीवन के विपरीत भाव की जन्मदात्री होती हैं । यथासाध्य इनसे बचे ही रहना चाहिए । इन दुर्बलताओं के पालन में जो सुख दीखता है, वह आसुरी होता है और विष की तरह मानवी जीवन को कष्टदायक बना देता है ।

वास्तविक और सच्चे सुख की खोज भौतिक पदार्थों और उनके संयोग से इन्द्रियों में नहीं करनी चाहिए । क्योंकि पूरा जीवन लगा देने पर भी वह वहां नहीं मिलेगा । वास्तविक सुख आध्यात्मिक जीवन क्रम में ही प्राप्त होता है । तन, मन और कर्म से आध्यात्मिक बनिए, आत्मा के दोष दुरितों को दूर करिए और जल के कमल की भांति संसार में रहते हुए संसार का भोग करिए । आपको न कभी दुख होगा और न आनंद का अभाव सताएगा ।

मुद्रक : युग निर्माण प्रेस, मथुरा

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प

–हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।

–शरीर को भगवान का मन्दिर समझकर आत्म- संयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।

–मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाये रखने के लिये स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।

–इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत् अभ्यास करेंगे।

–अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।

–मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।

–समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।

–चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।

–अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।

–मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

–दूसरों के साथ वह व्यवहार न करेंगे, जो हमें अपने लिये पसन्द नहीं।

–नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।

–संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिये अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।

–परम्पराओं की तुलना में विवेक को महत्व देंगे।

–सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नव- सृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।

–राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।

–मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनायेंगे, तो युग अवश्य बदलेगा।

–"हम बदलेंगे-युग बदलेगा", "हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा", इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।